॥ॐ॥
॥श्री परमात्मने नमः ॥
॥श्री गणेशाय नमः॥

॥ कठरूद्र उपनिषद॥

विषय सूची

॥अथ कठरुद्रोपनिषत्॥ 3

कठरूद्र उपनिषद् 4

शान्तिपाठ 19

॥ श्री हरि ॥

॥अथ कठरुद्रोपनिषत्॥

॥ हरिः ॐ ॥

परिव्रज्याधर्मपूगालंकारा यत्पदं ययुः ।
तदहं कठविद्यार्थं रामचन्द्रपदं भजे ॥

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ श्री हरि ॥

॥कठरुद्रोपनिषत्॥

कठरूद्र उपनिषद

हरिः ॐ ॥ देवा ह वै भगवन्तमब्रुवन्नधीहि भगवन्ब्रह्मविद्याम् । ॥१॥

एक बार समस्त देवगण भगवान् प्रजापति ब्रह्माजी के समीप जाकर बोले- हे भगवन्! आप कृपा करके हम लोगों को ब्रह्मविद्या का उपदेश करें॥१॥

स प्रजापतिरब्रवीत्सशिखान्केशान्निष्कृत्य विसृज्य यज्ञोपवीतं
निष्कृत्य पुत्रं दृष्ट्वा त्वं ब्रह्मा त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार-
स्त्वमोङ्कारस्त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं धाता त्वं विधाता त्वं
प्रतिष्ठाऽसीति वदेत् । अथ पुत्रो वदत्यहं ब्रह्माहं यज्ञोऽहं
वषट्कारोऽहमोंकारोऽहं स्वाहाहं स्वधाहं धाताहं
विधाताहं त्वष्टाहं प्रतिष्ठास्मीति ।
तान्येतान्यनुव्रजन्नाश्रुमापातयेत् ।
यदश्रुमापातयेत्प्रजां विच्छिन्द्यात् ।
प्रदक्षिणमावृत्त्यैतच्चैतच्चानवेक्षमाणाः प्रत्यायन्ति
स स्वर्ग्यो भवति ब्रह्मचारी । ॥२॥

तब प्रजापति ने कहा- शिखा के साथ बालों को मुण्डन कराकर और यज्ञोपवीत का परित्याग करके, अपने पुत्र को देखकर उससे इस प्रकार कहे कि 'तुम ब्रह्मा हो, तुम यज्ञ हो, तुम वषट्कार हो, तुम ॐकार हो , तुम स्वाहा हो, तुम स्वधा हो, तुम धाता हो, तुम विधाता हो'। ऐसा सुनने के बाद पुत्र कहे कि 'मैं ब्रह्मा हूँ, मैं यज्ञ हूँ, मैं वषट्कार हैं, मैं ॐकार हैं, मैं स्वाहा और स्वधा हैं, मैं ही धाता, विधाता, त्वष्टा भी हैं तथा प्रतिष्ठा भी मैं ही हूँ।' इस प्रकार से परिव्राजक (संन्यासी) होकर घर से बाहर निकलने पर जब पुत्र-पत्नी आदि पीछे-पीछे गमन करें, तो उन्हें देखकर के अश्रुपात न करे। यदि अश्रुपात करेगा, तो उसकी संतान विनष्ट हो जायेगी। तदनन्तर वे समस्त परिवारीजन संन्यासी की प्रदक्षिणा करने के पश्चात् उसे बिना देखे ही यदि वापस लौट जाते हैं, तो इस तरह का संन्यासी देवलोक का अधिकारी होता है॥२॥

वेदमधीत्य वेदोक्ताचरितब्रह्मचर्यो
दारानाहृत्य पुत्रानुत्पाद्य ताननुपादिभिर्वितत्येष्ट्वा च
शक्तितो यज्ञैः । तस्य संन्यासो गुरुभिरनुज्ञातस्य बान्धवैश्च ।
सोऽरण्यं परेत्य द्वादशरात्रं पयसाग्निहोत्रं जुहुयात् ।
द्वादशरात्रं पयोभक्षा स्यात् । द्वादशरात्रस्यान्ते
अग्नये वैश्वानराय प्रजापतये च प्राजापत्यं चरुं
वैष्णवं त्रिकपालमग्निं संस्थितानि पूर्वाणि दारुपात्राण्याग्नौ
जुहुयात् । मृण्मयान्यप्सु जुहुयात् । तैजसानि गुरवे दद्यात् ।
मा त्वं मामपहाय परागाः । नाहं त्वामपहाय परागामिति ।
गार्हपत्यदक्षिणाग्न्याहवनीयेष्वरणिदेशाद्रस्समुष्टिं
पिबेदित्येके । सशिखान्केशान्निष्कृत्य विसृज्य यज्ञोपवीतं

भूःस्वाहेत्यप्सु जुहुयात् । अत ऊर्ध्वमनशनमपां प्रवेश-
मग्निप्रवेशं वीराध्वानं महाप्रस्थानं वृद्धाश्रमं वा
गच्छेत् । पयसा यं प्राश्नीयात्सोऽस्य सायंहोमः । यत्प्रातः
सोऽयं प्रातः । यद्दर्शे तद्दर्शनम् । यत्पौर्णमास्ये तत्पौर्णमास्यम् ।
यद्वसन्ते केशश्मश्रुलोमनखानि वापयेत्सोऽस्याग्निष्टोमः । ॥३॥

ब्रह्मचारी द्वारा वेदों-शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद विवाह करके गृहस्थ धर्म को निर्वाह करते हुए पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् उनको सुसंस्कृत बनाकर, अपनी शक्ति के अनुसार यज्ञ-हवन आदि करने के उपरान्त अपने इष्ट-मित्रों तथा गुरुजनों से आज्ञा लेकर संन्यास ग्रहण किया जा सकता है। इस प्रकार संन्यास आश्रम में प्रवेश करने वाला वन में जाकर द्वादश रात्रियों तक दुग्ध से अग्निहोत्र करे और साथ ही द्वादश रात्रियों तक केवल दुग्धाहार पर रहे। द्वादश रात्रियों के पश्चात् विष्णु एवं रुद्र से सम्बन्धित चरु को, जो तीन कपाल (मिट्टी के पात्रों) पर सिद्ध किया (पकाया) गया हो; वैश्वानर अग्नि तथा प्रजापति के उद्देश्य से हवन कर दे। अग्निहोत्र में उपयोग किये हुए काष्ठ पात्रों को भी अग्नि में आहुति रूप में समर्पित कर दे। मिट्टी के पात्रों को जलाशय में समर्पित कर दे और स्वर्णादि के बने पदार्थों को अपने गुरु को दे दे। उस समय (गुरु के प्रति) इस प्रकार कहे 'तुम मुझे छोड़कर दूर गमन न करना तथा मैं तुम्हें त्याग कर दूर नहीं जाऊँगा।' कुछ शास्त्रों का मत है कि इसके पश्चात् गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि और आहवनीय इन तीन प्रकार की यज्ञाग्नियों से अरणियों के पास से एक मुट्ठी भस्म लेकर पान (ग्रहण) करे। शिखा के साथ बालों को मुण्डन कराके तथा यज्ञोपवीत को उतार कर 'ॐ भूः

स्वाहा' मंत्र को पढ़ते हुए जलाशय में विसर्जित कर दे। तत्पश्चात् अनशन, जल प्रवेश, अग्नि प्रवेश, वीरों के मार्ग का अनुसरण करके महाप्रस्थान करे या फिर किसी वृद्ध संन्यासी के आश्रम में निवास हेतु गमन करे । दुग्ध अथवा जल के सहित जो कुछ भी वह भोजन करे, वही भोजने उसका सायंकालीन यज्ञ है और प्रात:काल के समय में जो भोज्य पदार्थ ग्रहण करे, वही उसका प्रात:कालीन हवन है। अमावस्या के दिन जिस भोजन को ग्रहण करता है, वही उसका दर्शयज्ञ है। पूर्णिमा को जो भोजन ग्रहण करता है, वही उसका पौर्णमास्य यज्ञ है और वसन्त ऋतु में जो वह केश, दाढी, पूँछ, रोएँ, नख आदि कटवाता है, वही उसका अग्निष्टोम कहा गया है॥३॥

संन्यस्याग्निं न पुनरावर्तयेन्मृत्युर्जयमावहमित्यध्यात्म-
मन्त्रान्पठेत् । स्वस्ति सर्वजीवेभ्य इत्युक्त्वात्मानमनन्यं ध्यायन्
तदूर्ध्वबाहुर्विमुक्तमार्गो भवेत् ।
अनिकेतश्चरेत् । भिक्षाशी यत्किंचिन्नाद्यात् । लवैकं न
धावयेज्जन्तुसंरक्षणार्थं वर्षवर्जमिति । तदपि श्लोका भवन्ति । ॥४॥

संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् पुनः अग्नि का आधान अर्थात् अग्नि की स्थापना नहीं करनी चाहिए। केवल 'मृत्युर्जयमावहम्' आदि आध्यात्मिक मन्त्रों का जप करना चाहिए। समस्त भूत-प्राणियों का कल्याण हो, ऐसा कहकर केवल आत्मतत्त्व का चिन्तन करता हुआ, ऊर्ध्व की ओर हाथों को उठाये हुए (परमात्मा के अतिरिक्त और किसी से साधन प्राप्त होने की कामना से मुक्त होकर) प्रपञ्च रहित

मार्ग में गृहहीन होकर विचरण करे। भिक्षा के द्वारा प्राप्त अन्न के अतिरिक्त और कुछ भी ग्रहण न करे। एक स्थान पर क्षण-मात्र भी न रुके, सतत विचरण करता रहे। जीव-हिंसा से बचे रहने के लिए वर्षाकाल में विचरण की प्रक्रिया को विराम दे दे। इस संदर्भ (संन्यासी की मर्यादा) में कुछ ऐक भी हैं॥४॥

कुण्डिकां चमसं शिक्यं त्रिविष्टमुपानहौ ।
शीतोपघातिनीं कन्थां कौपीनाच्छादनं तथा ॥ ॥५॥

पवित्रं ज्ञानशाटीं च उत्तरासङ्गमेव च ।
यज्ञोपवीतं वेदांश्च सर्वं तद्वर्जयेद्यतिः ॥ ॥६॥

स्नानं पानं तथा शौचमद्भिः पूताभिराचरेत् ।
नदीपुलिनशायी स्याद्देवागारेषु वा स्वपेत् ॥ ॥७॥

नात्यर्थं सुखदुःखाभ्यां शरीरमुपतायेत् ।
स्तूयमानो न तुषेत निन्दितो न शपेत्परान् ॥ ॥८॥

संन्यास ग्रहण करने वाले मनुष्य को चाहिए कि वह कुण्डिका, चमस (यज्ञीय पात्र) और शिक्य (झोली) आदि को एवं तिपाई, जूते, (जाड़े को दूर करने वाली) कन्था (कथरी), कौपीन के ऊपर अङ्गाच्छादन करने वाला वस्त्र, कुश की बनी हुई पवित्री, स्नान के पश्चात् धारण करने वाले वस्त्र, उत्तरीय वस्त्र, यज्ञोपवीत तथा वेदाध्ययन आदि सभी का परित्याग कर दे। वह अपना स्नान, पान एवं शौच आदि कृत्य पवित्र जल से सम्पन्न करे। नदी के तट पर अथवा देव मंदिर में जाकर

शयन करे। वह अधिक विश्राम न करे अथवा अधिक परिश्रम से शरीर को व्यर्थ में कष्ट न दे। वह दूसरों के द्वारा अपनी प्रशंसा श्रवण करके न प्रसन्न हो तथा न निन्दा या अपमान किये जाने पर गाली अथवा शाप दे॥५-८॥

ब्रह्मचर्येण संतिष्ठेदप्रमादेन मस्करी ।
दर्शनं स्पर्शनं केलिः कीर्तनं गुह्यभाषणम् ॥ ९॥

संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियान्निर्वृत्तिरेव च ।
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ १०॥

विपरीतं ब्रह्मचर्यमनुष्ठेयं मुमुक्षुभिः ।
यज्जगद्भासकं भानं नित्यं भाति स्वतः स्फुरत् ॥ ११॥

संन्यासी को आलस्य-प्रमाद से रहित होकर संयमपूर्वक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुए जीवनयापन करना चाहिए। स्त्रियों का दर्शन, स्पर्श, क्रीड़ा, चर्चा, गुह्य (काम तत्त्व से सम्बन्धित) विषयों की बात-चीत, | काम-सङ्कल्प, सम्भोग के लिए प्रयत्न तथा सम्भोग की क्रिया-ये आठ प्रकार के मैथुन विद्वान् पुरुषों के द्वारा बताये गये हैं। उक्त आठ प्रकार के मैथुन के त्याग रूप ब्रह्मचर्य का पालन मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखने वाले लोगों को करना चाहिए॥९-११॥

स एव जगतः साक्षी सर्वात्मा विमलाकृतिः ।
प्रतिष्ठा सर्वभूतानां प्रज्ञानघनलक्षणः ॥ १२॥

न कर्मणा न प्रजया न चान्येनापि केचित् ।
ब्रह्मवेदनमात्रेण ब्रह्माप्नोत्येव मानवः ॥ १३॥

जो जगत् को प्रकाश देने वाला है, नित्य प्रकाश रूप में स्वप्रकाशित है, वही समस्त जगत् का साक्षी है, निर्मल आकृति वाला (वह) सभी की आत्मा है। वह प्रज्ञानघन के रूप में है, समस्त प्राणि-समुदाय उसी ब्रह्म में प्रतिष्ठित हैं। मनुष्य परब्रह्म परमात्मा को न कर्म के द्वारा, न सन्तान के द्वारा और न ही दूसरे अन्य किसी साधन के द्वारा पा सकता है; अपितु वह उस परब्रह्म को ब्रह्मानुभव के द्वारा ही प्राप्त कर सकता है॥१२-१३॥

तद्विद्या विषयं ब्रह्म सत्यज्ञानसुखाद्वयम् ।
संसारे च गुहावाच्ये मायाज्ञानादिसंज्ञके ॥ १४॥

निहितं ब्रह्म यो वेद परमे व्योम्नि संज्ञिते ।
सोऽश्नुते सकलान्कामान्क्रमेणैव द्विजोत्तमः ॥ १५॥

प्रत्यगात्मानमज्ञानमायाशक्तेश्च साक्षिणम् ।
एकं ब्रह्माहमस्मीति ब्रह्मैव भवति स्वयम् ॥ १६॥

वह सत्य-ज्ञान-आनन्द स्वरूप अद्वितीय ब्रह्म इस माया, अज्ञान एवं गुहा आदि नामों से कहे जाने वाले संसार में विद्यमान है। उस ब्रह्म को मात्र विद्या (सद्ज्ञान) के माध्यम से ही जाना जाता है। जो मनुष्य

परम व्योम रूपी नित्य धाम में विद्यमान इस अविनाशी ब्रह्म को जानता है, वह (द्विजों में श्रेष्ठ) ब्राह्मण क्रमानुसार समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। उसकी सभी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। अज्ञान एवं माया शक्ति के साक्षीरूप प्रत्यगात्मा को जो मनुष्य 'मैं एक ब्रह्मस्वरूप हूँ' इस प्रकार जानता है, वह (मनुष्य) स्वयं ही ब्रह्मस्वरूप हो जाता है॥१४-१६॥

ब्रह्मभूतात्मनस्तस्मादेतस्माच्छिक्तमिश्रितात् ।
अपञ्चीकृत आकाशसंभूतो रज्जुसर्पवत् ॥ १७॥

आकाशाद्वायुसंज्ञस्तु स्पर्शोऽपञ्चीकृतः पुनः ।
वायोरग्निस्तथा चाग्नेराप अद्भ्यो वसुन्धरा ॥ १८॥

तानि भूतानि सूक्ष्माणि पञ्चीकृत्येश्वरस्तदा ।
तेभ्य एव विसृष्टं तद्ब्रह्माण्डादि शिवेन ह ॥ १९॥

ब्रह्माण्डस्योदरे देवा दानवा यक्षकिन्नराः ।
मनुष्याः पशुपक्ष्याद्यास्तत्तत्कर्मानुसारतः ॥ २०॥

शक्ति सम्पन्न इस ब्रह्म रूप आत्मा से उसी प्रकार अपञ्चीकृत आकाश अर्थात् शब्द आदि तन्मात्राएँ उत्पन्न हुईं, जिस प्रकार रज्जु (रस्सी) में सर्प की प्रतीति होती है। इसके पश्चात् पुनः आकाश से वायु संज्ञक अपञ्चीकृत स्पर्श-तन्मात्राओं की उत्पत्ति हुई। तदनन्तर वायु से अग्नि की उत्पत्ति, अग्नि से जल की उत्पत्ति और जल से पृथिवी की उत्पत्ति हुई। उन सूक्ष्म भूतों को शिवस्वरूप ईश्वर ने पञ्चीकृत करके

उन्हीं से ब्रह्माण्ड आदि की रचना की। ब्रह्माण्ड के उदर में समस्त भूत-प्राणियों के पूर्वकृत कर्मानुसार देव, दानव, यक्ष, किन्नर, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि योनियों की सृष्टि-रचना हुई॥१७-२०॥

अस्थिस्नाय्वादिरूपोऽयं शरीरं भाति देहिनाम् ।
योऽयमन्नमयो ह्यात्मा भाति सर्वशरीरिणः ॥ २१॥

ततः प्राणमयो ह्यात्मा विभिन्नश्चान्तरः स्थितः ।
ततो विज्ञान आत्मा तु ततोऽन्यश्चान्तरः स्वतः ॥ २२॥

आनन्दमय आत्मा तु ततोऽन्यश्चान्तरस्थितः ।
योऽयमन्नमयः सोऽयं पूर्णः प्राणमयेन तु ॥ २३॥

मनोमयेन प्राणोऽपि तथा पूर्णः स्वभावतः ।
तथा मनोमयो ह्यात्मा पूर्णो ज्ञानमयेन तु ॥ २४॥

आनन्देन सदा पूर्णः सदा ज्ञानमयः सुखम् ।
तथानन्दमयश्चापि ब्रह्मणोऽन्येन साक्षिणा ॥ २५॥

सर्वान्तरेण पूर्णश्च ब्रह्म नान्येन केनचित् ।
यदिदं ब्रह्मपुच्छाख्यं सत्यज्ञानद्वयात्मकम् ॥ २६॥

अस्थि, स्नायु आदि से निर्मित यह समस्त जीवों को शरीर भी अपने कर्मानुसार ही प्रकाशित हो रहा है। सभी शरीर धारण करने वालों का यह जो अन्नमय आत्मा स्थूल शरीर के माध्यम से प्रकाशित हो

रहा है, उससे पृथक् एक प्राणमय आत्मा और है, जो कि इस अन्नमय आत्मा के अन्दर विद्यमान है। इससे भी सूक्ष्म और भिन्न मनोमय आत्मा है, जो प्राणमय के अन्दर स्थित है। इससे सूक्ष्म विज्ञानमय आत्मा है, जो मनोमय आत्मा के अन्दर विद्यमान है। इससे भी अतिसूक्ष्म आनन्दमय आत्मा है, जो विज्ञानमय आत्मा के अन्दर स्थित है। अन्नमय आत्मा प्राणमय से परिपूर्ण है, वैसे ही प्राणमय आत्मा स्वभावानुसार मनोमय आत्मा से पूर्ण है। मनोमय आत्मा विज्ञानमय से पूर्ण है तथा सदा सुखस्वरूप विज्ञानमय आत्मा आनन्दमय से परिपूर्ण रहता है। आनन्दमय आत्मा अपने से अलग साक्षिरूप सर्वत्र व्याप्त, अन्तर्यामी ब्रह्म के द्वारा परिपूर्ण है। वह ब्रह्म किसी दूसरे के द्वारा नहीं; वरन् अपने आप ही सभी तरफ से परिपूर्ण है॥२१-२६॥

सारमेव रसं लब्ध्वा साक्षाद्देही सनातनम् ।
सुखी भवति सर्वत्र अन्यथा सुखता कुतः ॥ २७॥

असत्यस्मिन्परानन्दे स्वात्मभूतेऽखिलात्मनाम् ।
को जीवति नरो जन्तुः को वा नित्यं विचेष्टते ॥ २८॥

तस्मात्सर्वात्मना चित्ते भासमानो ह्यसौ नरः ।
आनन्दयति दुःखाढ्यं जीवात्मानं सदा जनः ॥ २९॥

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्यत्वादिलक्षणे ।
निर्भेदं परमाद्वैतं विन्दते च महायतिः ॥ ३०॥

तदेवाभयमत्यन्तकल्याणं परमामृतम् ।

सद्रूपं परमं ब्रह्म त्रिपरिच्छेदवर्जितम् ॥ ३१॥

यदा ह्येवैष एतस्मिन्नल्पमप्यन्तरं नरः ।
विजानाति तदा तस्य भयं स्यान्नात्र संशयः ॥ ३२॥

अस्यैवानन्दकोशेन स्तम्बान्ता विष्णुपूर्वकाः ।
भवन्ति सुखिनो नित्यं तारतम्यक्रमेण तु ॥ ३३॥

तत्तत्पदविरक्तस्य श्रोत्रियस्य प्रसादिनः ।
स्वरूपभूत आनन्दः स्वयं भाति परे यथा ॥ ३४॥

निमित्तं किंचिदाश्रित्य खलु शब्दः प्रवर्तते ।
यतो वाचो निवर्तन्ते निमित्तानामभवतः ॥ ३५॥

निर्विशेषे परानन्दे कथं शब्दः प्रवर्तते ।
तस्मादेतन्मनः सूक्ष्मं व्यावृतं सर्वगोचरम् ॥ ३६॥

यस्माच्छ्रोत्रत्वगक्ष्यादिखादिकर्मेन्द्रियाणि च ।
व्यावृत्तानि परं प्राप्तुं न समर्थानि तानि तु ॥ ३७॥

जो यह ज्ञान एवं सत्य के रूप में अद्वितीय परब्रह्म है, वही सबका आश्रय-स्थल है। वह सबका सार एवं रसस्वरूप है। उस सनातन तत्त्व को पाकर के यह देही (जीवात्मा) सर्वत्र सुखानुभव प्राप्त करता है। इसके अतिरिक्त अन्यत्र सुख का भाव कहाँ है? सम्पूर्ण भूत-प्राणियों के आत्मस्वरूप इस परानन्द (परमानन्द) ब्रह्म के उपस्थित

न रहने पर भला कौन मनुष्य जीवित रह सकता है अथवा कौन-सा प्राणी नित्य चेष्टा करता है? अतः जो सर्वान्तर्यामी रूप से सभी के चित्त में प्रतिभासित होता है, वही परब्रह्म अविनाशी परमात्मा दुःखों से घिरे हुए जीवात्मा को सदैव आनन्द प्रदान करता है। जो अदृश्यत्व आदि लक्षणों से युक्त इस पर-तत्त्व से अभेदरूप परम अद्वैतरूप ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, वही महायति (संन्यासी) है। देश-काल एवं पात्र से अपरिच्छिन्न, सत्यस्वरूप परब्रह्म ही अभयपद, परम अमृततुल्य एवं कल्याणमय है। जब तक मनुष्य को इसमें थोड़ा भी व्यवधान दृष्टिगोचर होता है, तब तक उसे (जन्म-मृत्यु का भय बना रहता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। छोटे से छोटे क्षुद्र तृण से लेकर भगवान् विष्णु तक सभी तारतम्य के अनुसार आनन्द रूप कोश से नित्य ही आनन्द की अनुभूति करते हैं। इस लोक और परलोक कें भोगों से विरक्त, प्रसन्नमना श्रोत्रिय को यह स्वरूप भूत-आनन्द स्वयमेव अनुभूत होता है। यह अनुभूति उसे परमात्म पद के अनुरूप ही होती है, वह शब्दों में व्यक्त नहीं हो सकती; क्योंकि शब्द तो किसी आश्रय के सहारे ही व्यक्त होता है। परातत्त्व में निमित्त का अभाव होने के कारण वाणी वहाँ से वापस लौट आती है। जो सभी विशेषों से रहित परानन्दरूप तत्त्व है, वहाँ पर शब्द की प्रवृत्ति किस प्रकार से हो? इसलिए यह मन अतिसूक्ष्म और सीमित शक्ति से युक्त होकर इधर-उधर सभी जगह गमन करता रहता है; क्योंकि श्रोत्र, त्वक् एवं नेत्रादि ज्ञानेन्द्रियाँ और शब्द स्पर्शादि उनके विषय तथा वाणी, हाथ-पैर आदि कर्मेन्द्रियाँ सीमित शक्ति वाली हैं॥२७-३७॥

तद्ब्रह्मानन्दमद्वन्द्वं निर्गुणं सत्यचिद्घनम् ।
विदित्वा स्वात्मरूपेण न बिभेति कुतश्चन ॥ ३८॥

एवं यस्तु विजानाति स्वगुरोरुपदेशतः ।
स साध्वासाधुकर्मभ्यां सदा न तपति प्रभुः ॥ ३९॥

ताप्यतापकरूपेण विभातमखिलं जगत् ।
प्रत्यगात्मतया भाति ज्ञानाद्वेदान्तवाक्यजात् ॥ ४०॥

इसलिए परमात्म तत्त्व को प्राप्त करने में ये समस्त इन्द्रियाँ समर्थ नहीं हैं। जो पुरुष उस द्वन्द्वातीत, निर्गुण, सत्यस्वरूप और विज्ञानघन ब्रह्मानन्द को 'यह मेरा ही स्वरूप है, ऐसा जान लेता है, उसे कहीं पर भी भय नहीं व्याप्त होता। इस तरह से जो भी जितेन्द्रिय मनुष्य अपने गुरु के उपदेश द्वारा आत्म साक्षात्कार के माध्यम से ब्रह्मानन्द को प्राप्त कर लेता है, वह सत्य-असत्य कर्मों के द्वारा कभी भी संतप्त नहीं होता । विषयभोग तापक हैं और चित्त ताप्य है, चित्त एवं उसके विषयों से यह सम्पूर्ण विश्व विभासित हो रहा है॥३८-४०॥

शुद्धमीश्वरचैतन्यं जीवचैतन्यमेव च ।
प्रमाता च प्रमाणं च प्रमेयं च फलं तथा ॥ ४१॥

इति सप्तविधं प्रोक्तं भिद्यते व्यवहारतः ।
मायोपाधिविनिर्मुक्तं शुद्धमित्यभिधीयते ॥ ४२॥

मायासंबन्धतश्चेशो जीवोऽविद्यावशस्तथा ।
अन्तःकरणसंबन्धात्प्रमातेत्यभिधीयते ॥ ४३॥

तथा तद्वृत्तिसंबन्धात्प्रमाणमिति कथ्यते ।
अज्ञातमपि चैतन्यं प्रमेयमिति कथ्यते ॥ ४४॥

तथा ज्ञातं च चैतन्यं फलमित्यभिधीयते ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं स्वात्मानं भावयेत्सुधीः ॥ ४५॥

वेदान्त-शास्त्रों में वर्णन मिलता है कि वह प्रत्येक आत्मा के रूप में है। सात तरह के जिन तत्त्वों को वर्णन किया गया है, वे ब्रह्म, ईश्वर, जीव, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और फल हैं, इसमें व्यावहारिक दृष्टि से भेद माना गया है। परब्रह्म परमात्मा तो शुद्ध-चैतन्य स्वरूप है, वह माया के द्वारा निर्मित उपाधियों से सदा-सर्वदा मुक्त रहता है। मायारूप होने से वह ईश्वर है एवं अविद्या (अज्ञान) के वश में होने के कारण वह जीव हो जाता है। उसका अन्त:करण से सम्बन्ध होने से वही प्रमाता (ज्ञाता) कहा जाता है। उसके चित्त द्वारा अनुभूति के सम्बन्ध से वह प्रमाण संज्ञा को प्राप्त होता है। वह चैतन्य युक्त ब्रह्म जब तक खोजा जाता है, तब तक प्रमेय है। और वही जब ज्ञात हो जाता है, तब फल संज्ञक हो जाता है॥४१-४५॥

एवं यो वेद तत्त्वेन ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारं वच्मि यथार्थतः ॥ ४६॥

स्वयं मृत्वा स्वयं भूत्वा स्वयमेवावशिष्यते ॥ इत्युपनिषत् ॥ ॥४७॥

इसलिए बुद्धिमान् पुरुष, अपने आपको 'मैं सब उपाधियों से मुक्त हूँ-ऐसा मानकर मुक्तावस्था का सतत चिंतन करे। इस प्रकार जो तत्त्वतः जानता है, वह ब्रह्मत्व को प्राप्त करने में सदा ही समर्थ होता है। मैंने वेदान्त के सर्वसिद्धान्तों का सार यथार्थरूप में कहा है। अपने कर्मों से जीव स्वयं ही उत्पन्न होता है, स्वयं ही मृत्यु को प्राप्त होता है और स्वयं ही अवशिष्ट रूप में बचा रहता है। यह सब आत्मा का ही खेल है, आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। यही इस उपनिषद् का रहस्य है॥४६-४७॥

॥ हरि ॐ ॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ १९॥

परमात्मा हम दोनों गुरु शिष्यों का साथ साथ पालन करे। हमारी रक्षा करें। हम साथ साथ अपने विद्याबल का वर्धन करें। हमारा अध्यान किया हुआ ज्ञान तेजस्वी हो। हम दोनों कभी परस्पर द्वेष न करें।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हमारे, अधिभौतिक, अधिदैविक तथा तथा आध्यात्मिक तापों (दुखों) की शांति हो।

॥ इति कठरुद्रोपनिषत्समाप्ता ॥

॥ कठरूद्र उपनिषद समाप्त ॥

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष
श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय: ॥